Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

कवि और काव्य का उद्‌भव और विकास

डॉ. शीतान्शु रथ
उपाचार्य, सिंधिया प्राच्यविद्या शोध संस्थान,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश, भारत।

डॉ. रेखा गुप्ता
बी.एम. मेमोरियल डिग्री कालेज,
ककरही किशुनपुर माडरमऊ, अम्बेडकर नगर, उ. प्र., भारत

शोध आलेख सार– कवि और काव्य का आविर्भाव कब हुआ तथा इसका क्या तात्पर्य है, यह प्रश्न शायद साहित्य प्रेमी के मन में जरूर उठता होगा। यह जानना आवश्यक भी है। कवि और काव्य ये दोनों शब्द क्रमशः रचयिता और कृति (रचना) के लिए प्रसिद्ध है। कवि शब्द का आविर्भाव संस्कृत साहित्य में नहीं वरन् वैदिक साहित्य में हुआ था। कवि शब्द का प्रथम प्रयोग संभवतः ऋग्वेद में अग्नि को ज्ञानी सम्बोधित करने के अर्थ में हुआ था। यजुर्वेद में सर्वज्ञ परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार कवि शब्द वेद, पुराण, रामायण आदि से आते–आते अपने रूप को परिवर्तित करते हुए वर्तमान समय में रचनाकार के शब्दों में रूढि हो गया है। तथा कवि की रचना ही काव्य कहलाने लगा। इस प्रकार कवि और काव्य की यह यात्रा वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत तक आते–आते अपने परिवर्तित रूप की कथा बया कर रही है।

मुख्य शब्द– कवि, काव्य, उद्‌भव, विकास, संस्कृत, वेद, पुराण, रामायण।

"'कवि' तथा 'काव्य' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए अमरकोष के टीकाकार भानुजिदीक्षित कहते है कि– "कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा कवि।" 'शब्द कल्पद्रुम' में 'कु शब्दे' धातु से 'अच इ' सूत्र द्वारा इ प्रत्यय करने पर कवि शब्द की सिद्धि बतलायी गयी है। इस प्रकार श्लोक रचना या वर्णन करने वाले को कवि कहते है। विद्याधर ने एकावलि में **"कवयति इति कविः, तस्य कर्मः काव्यम्'** ऐसी व्युत्पति की है।"[१]

कवि शब्द का प्रथम प्रयोग सम्भवतः ऋग्वेद[२] के प्रथम सूक्त में ज्ञानी के अर्थ में अग्नि को सम्बोधित किया गया है, किन्तु यजुर्वेद में कवि शब्द का प्रयोग सर्वज्ञ परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है– **"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।"**[३] अथर्ववेद में कवि शब्द के साथ काव्य का भी उल्लेख किया गया है–

"कविः काव्येन परि पाह्यग्ने तथा देवस्य पश्य काव्यं न ममार जीर्यति।"[४]

श्रीमदभागवद के अनुसार 'आदिकवि' शब्द का प्रयोग ब्रह्मा के अर्थ में मिलता है–

"तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये"।[५]

अमरकोष के अनुसार 'कवि' शब्द दैत्य गुरु शुक्राचार्य के अर्थ में–

"शुक्रो दैत्यगुरु काव्य उशना भार्गवः कविः।"[६]

और पण्डित सामान्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है–

"विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः।

धीरो मनीषी ज्ञः प्रज्ञः संख्यावान्पण्डितः कविः।।"[७]

आदिकवि वाल्मीकि तथा व्यास जी के लिए भी 'कवि' शब्द का प्रयोग मिलता है, इसीके कारण महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में 'इत्यार्षे आदिकाव्ये.....' सर्वत्र लिखा हुआ उपलब्ध होता है। महर्षि व्यास कृत महाभारत की गणना भी काव्य के अन्तर्गत ही की जाती है। उन्होंने इसका प्रतिपादन भी स्वयं ही किया है–

"कृतं मयेदं भगवन्! काव्यं परमपूजितम्"।[८]

तथा साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी यही कहा है–

"अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः।"[९]

इस कारिका की व्याख्या में 'अस्मिन् महाकाव्ये, यथा–महाभारतम्' कहते हुए महाभारत को स्पष्ट रूप में 'महाकाव्य' स्वीकार किया है। ये ही दो काव्य–वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत–परवर्ती समस्त कवियों के उपजीव्य हुए है, इसमें किसी को भी कोई विचिकित्सा नहीं है।

अलंकारगुणयुक्त निर्दिष्ट पद समूह को 'काव्य' संज्ञा देने के पश्चात् उसमें वाक्चातुर्य की प्रधानता रहने पर भी 'रस ही काव्य का प्राण है' ऐसा अग्निपुराण का मत है।[१०] इसी की पुष्टि आचार्य वामन ने भी की है।[११]

पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' में– **'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'**[१२] तथा 'रसे सारश्चमत्कारः' वचनों द्वारा रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहकर रस में चमत्कार को ही सार माना है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने– **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'**[१३] के अनुसार रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना गया है।

इस प्रकार "चमत्कार पूर्ण रसात्मक गुणालंकारयुक्त निर्दोष वाक्य को 'काव्य' कहते है।"[१४]

काव्य की परम्परा स्पष्टताः हमें आदिकवि वाल्मीकि के रामायण से ही प्राप्त होता है–

"किम्प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।

कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुंगवः।।[१५]

रामायण में आद्योपान्त एक कथा का सूत्र पाठक को बाँधे रखता है। रामायण सर्गबद्ध काव्य होने के कारण ही परवर्ती काव्य–परम्परा का आदर्श सिद्ध होता है। महाभारत रामायण की अपेक्षा विस्तार में अप्रतिम है तथा समीक्षक इसे महा महाकाव्य भी कहते है। इस महान् महाकाव्य का परिचय जय, भारत तथा महाभारत के क्रम निरन्तरता से मिलता है। जहाँ तक संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों का सम्बन्ध है उसे सर्गबन्ध से जोड़कर प्रायशः सभी आचार्य "सर्गबन्धो महाकाव्यम्" से निरूपित करते है। आचार्य दण्डी ने 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम' के द्वारा महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण अथवा वस्तु निर्देश को स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ पूर्ववर्ती सभी काव्यलक्षणों का समावेश करते हुए महाकाव्य का विवेचन करते हुए 'एक वंशभवा भूपाः' तथा **"सर्गाअष्टाधिका इह"** आदि के द्वारा निर्देशित करते है।

लौकिक साहित्य के अन्तर्गत संस्कृत महाकाव्य आदिकवि वाल्मीकि से जुड़ा है, किन्तु महाकाव्य के उद्भव और विकास की दृष्टि से कालिदास तथा अश्वघोष के भी पूर्व कुछ बिखरे हुए पद्य अवश्य उपलब्ध होते है किन्तु उदाहरण के योग्य काव्य की प्राप्ति नहीं होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कालिदास अश्वघोष आदि की कृतियों को वाल्मीकि के रामायण से जोड़ने के लिए शताब्दियों के अन्तराल में बिखरे सम्बन्ध सूत्र दुर्भाग्य से अनुपलब्ध है, अतएव महाकाव्य का तात्विक परिचय हमें कालिदास के काव्यों से ही प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में कालिदास और अश्वघोष का कालक्रम विवादास्पद रहा है, परन्तु वर्तमान सन्दर्भ में उनके काव्य ही हमारे लिए प्रभावी, रचना कौशल और विकास के चरण में विचारणीय है। कालिदास एवं अश्वघोष के उपरान्त सहज, सरल तथा अकृत्रिम भावुकता या नैसर्गिक अलंकरण से कमनीय एवं आकर्षक कविता में महाकवि भारवि अर्थगौरव भरते दिखाई देते है। अर्थगौरव के स्थान पर शास्त्रदृष्टि से व्याकरण के द्वारा समझने योग्य काव्य के साथ भट्टि रावणवध लेकर उपस्थित होते है।

संस्कृत महाकाव्य की विकास परम्परा में कुमारदास कृत, 'जानकीहरण' का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। जानकीहरण की समीक्षा में राजशेखर ने कुमार के महत्त्व को कालिदास के समक्ष मानते हुए एक ही पद्य में इतना कुछ कह डाला जो कि पूरे एक ग्रन्थ के बराबर है–

"जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ।"

इस पद्य के द्वारा जानकीहरण और रघुवंश का महत्त्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। इन कवियों की भावभूमि यदि समान प्रतीत होती है तो भारवि और माघ के बीच भी काव्य कौशल की तुलनीयता के दर्शन होते है। भारवि के आराध्य शिव थे और उनका नायक अर्जुन पाशुपतास्त्र को प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या करता है तदुपरान्त पाशुपतास्त्र को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। भारवि ने काव्यकौशल में वृद्धि की दृष्टि से अपने महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्री' शब्द से तथा प्रत्येक सर्गान्त श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द को

प्रतिष्ठित किया है। इसके विपरीत माघ वैष्णव प्रतीत होते है, क्योंकि इन्होंने अपने काव्य को स्वयं ही 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तन मात्रचारु' कहकर निरुपित किया है। महाकवि माघ ने भी अपने महाकाव्य शिशुपालवध का प्रारम्भ 'श्री' शब्द तथा सर्गान्त श्लोक में भी 'श्री' शब्द को ही समाहित किया है।

किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध की तुलना में प्रायः किरातार्जुनीय के पक्ष में समीक्षक कहते है–

"तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।"

माघ के पक्ष में–

"उपमाकालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

"नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाः।।"

भारवि और माघ के उपरान्त इन्हीं के काव्य परम्परा का अनुशरण करते हुए नैषधीयचरित के सुप्रसिद्ध महाकवि श्री हर्ष का स्वागत करते हुए उनके प्रशंसक अनायास ही कह उठते है–

"उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।"

माघ के उपरान्त तथा श्रीहर्ष के समय तक अनेक महाकवियों के महाकाव्य संस्कृत साहित्य के परिप्रेक्ष्य में अपनी–अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं। यथा–अभिनन्द– कादम्बरीकथासार, मातृगुप्त–सेतुकाव्य, क्षेमेन्द्र–रामायणमंजरी, भारतमंजरी, पद्मगुप्त–नवसाहसांकचरित, विल्हण–विक्रमांकदेवचरित, हरिश्चन्द्र–धर्मशर्माभ्युदय आदि महाकाव्य भी सम्मिलित है।

संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में पंचन् शब्द का प्रयोग करते हुए महाकाव्यों के रूप में पाँच महाकाव्यों की पारम्परिक ख्याति अध्ययन–अध्यापन के लिए महत्त्वपूर्ण बनी रही है। इन पाँच महाकाव्यों में कालिदासकृत रघुवंशम् तथा कुमारसम्भवम्, भारविकृत किरातार्जुनीयम्, माघकृत–शिशुपालवधम् तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम् को समाहित किया गया है।

कालिदास के रघुवंशम् तथा कुमारसम्भवम् में मेघदूतम् को समाहित कर 'लघुत्रयी' के विशेषण से विभूषित किया तथा शेष तीनों महाकाव्य को विषयवस्तु की विशालता को देखते हुए 'बृहत्त्रयी' की संज्ञा से अलंकृत–किया। इन महाकाव्यों के विकास क्रम में ग्यारह–बारह सौ वर्षों का लम्बा इतिहास भी अंकित हुआ है।

वृहत्त्रयी के अन्तर्गत जिस काव्य–मार्ग को महाकवि भारवि ने विकसित किया, उसी मार्ग को महाकवि माघ पूर्वरूपेण प्रवाहित करने का प्रयास किया है। इस काव्य–मार्ग को आचार्यकुन्तक ने 'विचित्र मार्ग' संज्ञा से सम्बोधित किया। श्रीहर्ष इस विचित्र–मार्ग की परम्परा का निर्वाह करते हुए अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरित' की रचना तो की, किन्तु काव्यशास्त्र की दृष्टि से यद्यपि किसी परिभाषा के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित नहीं की। उनकी कविता में कहीं इतनी सादगी और सरलता है कि पद्य सुनते ही सहज ही उसका अर्थबोध हो जाता है तथा कहीं–कहीं ऐसी ग्रन्थियाँ भी महाकाव्य में दृष्टिगोचर होती है जिनको खोलने के

लिए गुरुओं की आवश्यकता भी होती है। ऐसा कार्य महाकवि के अनुसार जानबूझकर पिरोया गया है।[16] इनके कविता का प्रवाह सरस है तथा पूरेकाव्य में कहीं भी भारवि तथा माघ के काव्य के समान चित्रकाव्य की ओर कोई झुकाव नहीं दिखलाई देता है, यही कारण है जिससे श्री हर्ष बृहत्त्रयी के शीर्षस्थ महाकवि के स्थान पर प्रतिष्ठित हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. शिशुपालवधम्, हिन्दी टीकाकार–पं. हरगोबिन्द शास्त्री, पृ. ४।

२. ऋग्वेद, १/१/५

३. शुक्लयजुर्वेद, ४0/८

४. अथर्ववेद, ८/३/२0 तथा १0/८/३२

५. द्रष्टव्यः, श्रीमद्भागवत।

६. अमरकोश, १/३/२५

७. तत्रैव, २/७/५

८. महाभारत, अनुशासनपर्व, १/६१

९. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ६/५८0

१0. अग्निपुराण, ३३७/७,३३

११. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, १/१/१–३

१२. रसगंगाधर, पण्डितराज जगन्नाथ, १/१

१३. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, १/१

१४. शिशुपालवधम्, हिन्दी टीकाकार–पं. हरगोविन्द शास्त्री, पृ. ५

१५. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड, ६४/२३

१६. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्यया
प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढ़ग्रन्थिः समासादय–
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः।। नैषधीयचरित, २२/१५२